अनहद बाजे री

सम्पादक
डॉ. मधु रानी शुक्ला
सह-सम्पादक
शाम्भवी शुक्ला

अनहद बाजे री

डॉ. मधु रानी शुक्ला
शाम्भवी शुक्ला

₹ 1250
ISBN 978-93-93322-06-
9789393322067

कनिष्क पब्लिशिंग हाउस
4695/5-21 ए, अ... रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
फोन: 23270497, 23288285
E-mail: kanishkabooks@gmail.com
kanishka_publishing@yahoo.co.in

9. कबीर के साहित्य में संगीतात्मकता 59
डॉ. अनुभा गुप्ता

10. कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना के स्वर 67
डॉ. प्रियंका अरोड़ा

11. कबीर के पदों में संगीत एवं सामाजिक चेतना 75
डॉ. चन्द्रजीत वर्मा

12. संत कबीर तथा निर्गुण 83
प्रो. गिरीश चंद्रिकापुरे

13. काशी और कबीर 88
डॉ. शिव नारायण मिश्र

14. कबीर के राम 94
डॉ. आकांक्षी

15. कबीर की सहज भक्ति 104
डॉ. आकांक्षा गुप्ता

16. भगत शिरोमणि कबीरदास जी का बाणी दर्शनः
श्री गुरु ग्रंथ साहिब के विशेष संदर्भ में 110
डॉ. राजेश शर्मा

17. संगीत साधना में संत कबीर के विचार दर्शन 120
डॉ. श्वेता केशरी

18. कबीर के राम 127
डॉ. सुनीता द्विवेदी

19. निर्गुणी भजन गायन शैली 132
डॉ. साधना शिलेदार

20. कबीर के पदों में सांगीतिक तत्त्व 139
डॉ. मंदीप कौर

21. Raaga Vrindavani Sarang of Kafi Thaat and Saint Kabir's Bhajan: A Novel Composition 146
Mitali Mukherjee and Dr. Kiran Singh

22. Spiritual Thoughts of Kabir 153
Sanghamitra Chakravarty

23. कबीर की विचारधाराः तत्कालीन परिवेश के परिप्रेक्ष्य में 159
मेघना कुमार

24. भारतीय समकालीन कला में कबीरः चित्रण की दृष्टि से 165
मिठाई लाल

25. कबीर की काव्य दृष्टिः सौन्दर्य बोध के सन्दर्भ में 174
प्रीति यादव

26. कबीर और निर्गुण परम्परा 183
मौसमी सिन्हा एवं डॉ. सुनील कुमार तिवारी

27. निर्गुण भक्ति संगीत के उपासक संत कबीर 190
अंजू पाण्डेय

28. How Kabir's Caste-Revealing Poetry Relates to Present Indian Culture 196
Akanksha and Prof. Kinshuk Srivastava

29. कबीर के पद गायन में सामाजिक चेतना 203
जितेन्द्र सिंह एवं डॉ. रामशंकर

30. कबीरी गायन 213
ईशा भटनागर

31. कबीर और निर्गुण परंपरा 221
श्रद्धा जायसवाल एवं डॉ. ज्योति मिश्रा

32. Saint Kabir Das and Contribution towards Music 228
Amritpreet Kaur

33. श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में वर्णित कबीर वाणी का सांगीतिक विश्लेषण 235
हरप्रीत कौर

34. कबीर की निर्गुण संगीत परंपरा में प्रेम तथा लीला के तत्वः एक अध्ययन 244
रामभजन बेदी एवं डॉ. हरविंदर सिंह

35. कबीर कालीन उल्लेखित लोकवाद्यों की चर्चा 250
प्रो. विद्याधर प्रसाद मिश्रा एवं रेखा सेन

जी के विचार कई मुद्दों पर कबीर के विचारों के समान है। इन दोनों के लिए संत कबीर की भाषा में यह उपमा सटीकता से लागू पड़ती है–

युगन युगन हम योगी
आवे न जाय, मिट न कबहूं, शबद अनाहत भोगी
सभी ठौर जमात हमारी, सब ही ठौर पर मेला
हम सब माय सब है हम माय, हम है बहुरि अकेला

20

कबीर के पदों में सांगीतिक तत्त्व

डॉ. मंदीप कौर

भारत के इतिहास में भक्ति काल हर तरह से अत्याधिक उथल–पुथल का काल था। मुसलमानों का आगमन और भारत में बस जाना एक बहुत बड़ी घटना थी। उनका लक्ष्य राज्य स्थापना तो था ही, परन्तु उनका मुख्य उद्देश्य स्थानीय सांस्कृतिक तथा सामाजिक इकाई को पूर्णतः नष्ट कर अपने आप में आत्मसात् कर लेना था। दूसरी ओर इस काल में अनेक धार्मिक, दार्शनिक तथा साधना सम्बन्धी सम्प्रदाय चल रहे थे। जन–जीवन में एक दिगभ्रम की अवस्था थी। हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था भी विकृत हो रही थी तथा उसमें सहयोग और सद्भाव के स्थान पर जातीय कटुता और ऊँच–नीच की भावना से जनित पारस्परिक घृणा के भाव उत्पन्न हो गए थे। मुसलमानों में भी पीर–औलियों के प्रभाव से कई फिरके बन गए थे। ऐसे में निर्गुण भक्तों ने परमात्मा की एकता के आधार पर मानव की एकता का प्रतिपादन किया जिसमें भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद का विचित्र मिश्रण था और उनमें मौजूद सूक्ष्म भेद की ओर ध्यान नहीं दिया गया। निम्न हिन्दू समाज में भी कई महात्मा निकले जिन्होंने हिन्दू समाज में प्रचलित भेद भाव के विरूद्ध आवाज़ उठाई। रामानन्दजी ने सबके लिए भक्ति का मार्ग खोलकर उनको प्रोत्साहित किया। नामदेव, रविदास, दादू, कबीर आदि नीची जाति से ही थे। सभी निर्गुण भक्तों

ने मूर्ति पूजा, अवतारवाद तथा कर्मकाण्डों का जम कर विरोध किया तथा जात–पात के भेद को मिटाने का प्रयत्न किया। भक्तिकालीन कवियों ने अपने आपको जन–जीवन में पूर्णतः विलीन कर दिया था। न तो उन्हें अपने पृथक अस्तित्व का अहंकार था और न ही उनके मन में किसी प्रकार के यश की कामना थी। यही कारण था कि भक्त कवियों ने अपने व्यक्तिगत जीवन के बारे में बहुत कम संकेत दिये हैं और आत्मकथा अथवा जीवन चरित्र लिखने की प्रवृति तो उनमें कभी उत्पन्न ही नहीं हुई। "भक्तिकाल में भाषा और भाव, काव्य और संगीत का मणि–कांचन योग है। काव्य में संगीतात्मकता के सन्निवेश लिए जिस आत्मविश्वास, तीव्रानुभूति, सहज स्फूर्ति और अन्तः प्रेरणा की आवश्यकता होती है, भक्त कवियों में वह पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी।"[1] वास्तव में भक्तकाल ही ऐसा काल है, जिसमें भारतीय संस्कृति की समग्र चेतनामयी वाणी को संगीतमय अभिव्यक्ति मिली। सूर, मीरा, तुलसी, कबीर, नानक, परमानन्द के पद भक्तों, साहित्य रसिकों और गायक सभी के मन को बहुत भाते थे और उनके कंठों में आज तक बसे हैं और आगे भी बसे रहेंगे। यह संगीत ही था जिसने संत साहित्य और उनके उपदेशों को साधारण जन तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस उद्देश्य की प्राप्ति में भक्ति कालीन संत परम्परा का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है। इन संत कवियों तथा इनके शिष्यों ने गा–गाकर अपने उपदेशों को लोक तक पहुँचाया।

फूला फूला फिरै जगत में कैसा ना तारे।
माता कहे यह पुत्र हमारा, बहन कहे बिर मेरा।
कहे भाई यह भुजा हमारी, नार कहे नर मेरा।।
पेट पकर कर माता रोवै, बाहिं पकर कर भाई।
लपट–झपट कैतिरिया रोवै, हंस अकेला जाई।।

काशी की गलियों में एक साधु गाता हुआ चला जा रहा था। उसका वेश साधारण, सिर पर गाहरी टोपी, लम्बी दाड़ी, घुटनों तक का कुर्ता और हाथ में एक सारंगी।[2] डॉ. ओमप्रकाश ने अपनी पुस्तक 'मध्ययुगीन काव्य' में कबीर का चित्रण एक गाते हुए साधु के रूप में किया हैं, जो काशी की गलियों में घूम–घुमकर काशी निवासी उच्च कुल के धनाढ्य और मगहरवासी नीची जाति के लोगों (दोनों ही इन्द्रिय सुख में डूबे हुए हैं और इसी कारण शाक्तों का प्रभाव उन पर अधिक है[3]) को सुधारने का प्रयत्न करते है। वे आगे कहते हैं, "साधु को किसी ने हाथ बढ़ा कर भिक्षा न डाली तो साधु नया गीत गाने लगा"। डॉ. ओमप्रकाश बार–बार कबीर की कल्पना एक गाते हुए साधु के रूप में करते हैं। कबीर का समय भक्ति काल का था। कबीर केवल कवि ही नहीं संत भी थे। वे एक संत साधक थे। कबीर जी का समय विक्रमी संवत् 1455 से विक्रमी संवत् 1551 का माना जाता है परन्तु यह

प्रमाणिक नहीं है। डॉ. श्याम सुन्दर दास ने अपने शोध के आधार पर कबीर जी का जन्म संवत् 1456 तथा मृत्यु संवत् 1575 सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।[4] उनके जन्म को लेकर अनेक किवंदंतियां प्रचलित है परन्तु कबीर जी ने स्वयं को एक जुलाहे के रूप में प्रस्तुत किया है–"जाति जुलाहा नाम कबीरा बनि बनि फिरो उदासी।" "जाति जुलाहा मति को धीर, हरशि हर खिर मैं कबीर।"[5] "तूबाह्मान मैं कासी का जुलाहा।" भक्ति काल में उन्होंने अपने रहस्यवादी काव्य से भक्ति आन्दोलन को बहुत गहरे तक प्रभावित किया।"वे एकेश्वरवादी थे तथा निर्गुण और निराकार में विश्वास रखते थे। उन्हें अवतारवाद में विश्वास नहीं था।"[6] वे न तो हिन्दू धर्म को मानते थे और न ही मुस्लिम धर्म को। उन्होंने दोनों धर्मों में फैली कुरीतियों, कर्मकाण्डों और अंधविश्वास की निन्दा की तथा सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की। यही कारण था कि दोनों धर्मों के धर्मगुरूओं ने इन्हें हमेशा प्रताड़ित करने की कोशिश की। कबीर पंथ को मानने वाले लोग इनकी शिक्षाओं के अनुयायी है। कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे–एक जनश्रुति के अनुसार "मस कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।" सम्भव है कि जो उपदेश कबीर जी ने मौखिक रूप में दिये उनके शिष्यों ने उन्हें लिपिबद्ध किया तथा कबीर जी के नाम से प्रचारित किया। बीजक कबीर वाणी का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। परन्तु यह कबीर जी ने स्वयं लिखा इस विषय में संदेह है।

कबीर भक्ति कालीन संत काव्य धारा के शिखर कवि माने गए हैं, परन्तु काव्य रचना उनके जीवन का लक्ष्य नहीं था। उनका लक्ष्य था समाज में फैली कुरीतियों, आडम्बरों और पाखण्डों के बारे में जनसाधारण को सजग करना। वे अपना इकतारा लेकर घूम–घूमकर जनसाधारण के बीच जाकर अपनी रचनाओं का गायन करते थे और अपनी भावनाओं तथा शिक्षा को जन–जन तक पहुँचाते थे। "हिन्दी के कुछ आलोचकों ने कबीर को कवि स्वीकार करने में संकोच दिखया है। उनका कहना है कि कबीर को अलंकार और छन्द का ज्ञान नहीं था।"[7] उनकी ज्ञान प्राप्ति के साधन एवं स्त्रोत साधू सत्संग और पर्यटन थे। "इसलिए विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं के शब्दों, कवि समयों, प्रतीकों एवं अलंकारों के सौन्दर्य, उनके रूप को और उलट वासियों के विरोधाभास उनके साहित्य की अमूल्य निधि है। उपरोक्त गुण उनके काव्य में स्वतः अनायास और अलक्षित रूप में ही समाविष्ट हो गए हैं।"[8]

कबीर शास्त्र ज्ञान से वंचित थे परन्तु भाषा पर कबीर जी का पूर्ण अधिकार था। कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, फिर भी उनकी भाषा में परम्परा से चली आ रही विशेषताएं विद्यमान हैं। उन्होंने उस काल में पूर्वी जनपद में प्रचलित साधारण बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। उन्होंने अरबी, फारसी, पंजाबी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली तथा बुन्देलखंडी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है

इसलिए इनकी भाषा को "पंचमेल खिचड़ी" अथवा "सधुक्कड़ी" भी कहा जाता है। इन भाषाओं का प्रयोग गायन शैलियों की पद रचनाओं में सामान्यतः देखा जा सकता है। कबीर जी की वाणी में छन्द तथा अलंकारों के प्रयोग से एक प्रकार की लयात्मकता, शब्द प्रवाह तथा रंजकता विद्यमान है, जो कि संगीत के महत्वपूर्ण तत्व हैं। सम्भव है कि अलंकारों का प्रयोग कबीर जी ने जान बूझकर न किया हो किन्तु उनकी वाणी में जबरदस्त अलंकारों का प्रयोग मिलता है।

संत नाछाडैसंतईजेकोटकमिले असंत
चंदन भुवंगा बैठिया, सीतल तानातजंत।

–दृष्टांत अलंकार

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।[9]
संसा खूटा सुख भया, मिलया पिया राकंत।।

–रूपकातिशयोक्ति अलंकार

कबीर यहुमनकतगया, जोमन होता काल्हि।[10]
डूँगर बूठा मेहज्यूं, गयानि बाणा चालि।।

–रूपक और उपमी अलंकार

अतः इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि कबीर जी ने पद रचना करते समय संगीत का ध्यान तो अवश्य रखा ही होगा।

कबीर जी की जो वाणी में अध्यात्मिकता के आधार पर मुख्यतः दो रसों की प्रधानता देखी जा सकती है–भक्ति रस और शान्त रस। साथ ही श्रृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का उन्होंने खूब वर्णन किया है। भक्ति रस के पाँचों रूप कबीर के भक्ति परक पदों में मिल जाते हैं–शान्त रस, प्रेयान रस, प्रीति रस, मधुर रस तथा वात्सल्य रस। शान्ति रस के भी दो प्रकार माने गए हैं। शमा और सांद्रा। कबीर के साहित्य में शमा (निर्विकार मन) तथा सांद्रा (संसार से विरक्ति और परमात्मा से अनुरक्ति) दोनों रसों के दर्शन हो जाते है।

कबीर दर्शन साध का, साई आवै याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद।।

एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है–

कबीर मेरा मुझ महि किछु नहीं जो कि छहै सोतेरा।।
तेरा तुझ कऊसऊपते कि आलागै मेरा।।203।।

–गुरू ग्रन्थ साहिब, अंग–1364

एक समय था जब कबीर जी नाथ सम्प्रदाय से बहुत प्रभावित थे। यह वह काल था जब उत्तर भारत में योग और दक्षिण में भक्ति धारा का प्रभाव बहुत अधिक था। नाथ सम्प्रदाय में योग साधना को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। इसलिए कबीर जी ने अपने शुरूआती समय में योग परम्परा का अनुसरण किया। यह भी स्वाभाविक है कि इस परम्परा का प्रभाव भी कबीर जी के व्यक्तित्व पर अवश्य पड़ा होगा। योगी जगत से विमुख होकर अपनी अन्तर्मुखी साधना में लीन हो जाते हैं, तथा अनहद अथवा अनाहत नाद में अपना ध्यान लगाते हैं। संगीत में भी आहत नाद की साधना की जाती है। योगी अनाहत नाद की साधना करता है। अनाहत नाद की साधना के लिए आहत नाद की साधना आवश्यक है। परशुराम चतुर्वेदी अपने ग्रन्थ 'कबीर साहित्य की परख' में लिखते हैं कि संगीत शास्त्र के अनुसार हृदय के अनाहत चक्र से मन्द्र, कंठ के विशुद्ध चक्र से मध्यम तथा मूर्धा के सहस्त्रार से तार स्वरों की सृष्टि होती है। ऐसे में इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि कबीर जी ने अनाहत नाद की साधना के पूर्व आहत नाद की साधना भी अवश्य की होगी। कबीर के पदों एवं शबदों में जिस प्रकार का ध्वनि प्रवाह है, जिस प्रकार की शब्द रचना है, जिस प्रकार की लयात्मकता है, उससे स्पष्ट है कि कबीर जी ने पद रचना करते समय संगीत का ध्यान भी सहज ही रखा होगा। उनकी रचनाओं में नाद तत्व के प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। कबीर जी ने भी नाद के बिन्दु में स्थिर होने से 'अनहद' नाद को सुनने की चर्चा की है।

"अबधू नादै व्यंद गगन गाजै सबद अनाहद बाजै।"[11]

सम्भव है कि अनहद नाद अनुभव करने वाले कबीर ने आहत नाद, जो संगीत का आधार है, का अभ्यास भी अवश्य ही किया होगा। कबीर के शबद, जो कि गेय हैं इस मत का सटीक उदाहरण हैं। नाद की साधना का एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है–

नाद बिंद रंक इक खेला, आपे गुर आपे ही चेला।[12]

कबीर जी की वाणी का अध्ययन करने वाले विचारकों ने उनकी वाणी में कुछ ऐसी विशेषताओं को देखा और लक्षित किया जिनके आधार पर उनकी वाणी में निहित सांगीतिक तत्वों को प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

कबीर के काव्य में संगीतात्मकता के पूर्ण दर्शन होते हैं। कबीर के काव्य में संगीतात्मकता की भरमार है। उनकी वाणी गेयता से परिपूर्ण है। इनकी साखियां और रमैनी भी संगीतमय है। गुरू ग्रन्थ साहिब सिक्खों का प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ है। इसका सम्पादन सिक्खों के पांचवें गुरू अर्जुन देव जी ने किया। आदिग्रन्थ में सिक्ख गुरूओं

के अतिरिक्त सभी धर्मों के भक्तों की वाणी संकलित है, जिनमें जयदेवजी, परमानन्दजी, कबीर, रविदास, नामदेव, सैणजी, सधना भगत, छीवाजी, धन्नाजी के साथ पांचों वक्त की नमाज़ पढ़ने वाले बाबा फरीद जी सहित 30 भक्तों की वाणी संकलित है। गुरू ग्रन्थ साहिब की भाषा की सरलता, सटीकता कबीरजी के गेय पद, जोकि "आदिग्रन्थ" श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में संकलित किये गए हैं तथा जिन्हें शबद की संज्ञा दी गई है, उनमें संगीत के तत्वों की प्रधानता देखी जा सकती है। आदिग्रन्थ में संकलित इन पदों को राग सोरठ, धनाश्री, गौड़ी, गुर्जरी, सूही, तिलंग, ललित, बसंत, बिलावल आदि रागों के अन्तर्गत निर्दिष्ट किया गया है। कबीर जी की वाणी को इन रागों के अन्तर्गत कबीर जी ने स्वयं नहीं रखा, परन्तु यह सांगीतिक तत्वों की विद्यमानता के कारण ही सम्भव हो सका है। आदि ग्रन्थ में कबीर जी के 224 शबद दर्ज हैं। यह कबीर के पदों की संगीतात्मकता ही है कि राग बसंत के अन्तर्गत संकलित उनकी रचना "मौली धरती मौलिआ आकास। घट घट मौलिआ आतम पर गास।" (गुरू ग्रन्थ साहिब, अंग 1193) बसंत ऋतु में दरबार साहिब अमृतसर के गलियारों में प्रतिदिन गूँजती है। राग मारू में उनका एक अन्य शबद इस प्रकार है—मनरे राम सुमिरि राम सुमिरि राम सुमिरि भाई। इसी प्रकार कबीर ग्रन्थावली में भी कबीर के पदों को राग मारू, ललित, आसावरी, सोरठ आदि रागों के अन्तर्गत निर्दिष्ट किया गया है।

यह कहना सम्भव नहीं कि कबीर सूर, तुलसी की तरह शास्त्रीय संगीत परम्परा से परिचित थे या नहीं परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी वाणी शास्त्रीय संगीत की प्रसिद्धि में अवश्य प्रभावकारी सिद्ध हुई।

संदर्भ सूची

1. डॉ. शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ, पृ. 297, अशोक प्रकाशन, दिल्ली।
2. डॉ. ओमप्रकाश, मध्ययुगीन काव्य, पृ. 44, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली।
3. वही, पृ. 47
4. डॉ. श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 13—16, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
5. वही, पृ. 17
6. डॉ. भगवत् स्वरूप मिश्र, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 39, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
7. डॉ. शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ, पृ. 139, अशोक प्रकाशन, दिल्ली।

8. सत्य बाला देवी, हिन्दी साहित्य के महान् कवियों व लेखकों की रचनाओं का गवेषणात्मक अध्ययन, पृ. 64, महाजन पब्लिकेशनज, अम्बाला।
9. डॉ. भगवत् स्वरूप मिश्र, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 34, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
10. वही, पृ. 72
11. वही, पृ. 493
12. वही, पृ. 486